नीहारिका

श्रीशम्भूदयाल सक्सेना

बीकानेर
नवयुग ग्रन्थ-कुटीर

प्रकाशक
नवयुग ग्रन्थ-कुटीर
पुस्तक प्रकाशक और विक्रेता
बीकानेर

मूल्य डेढ़ रुपया
१०००
प्रथम बार
८-१-१९४१

मुद्रक
सेठिया जैन प्रिंटिंग प्रेस
बीकानेर

दो बातें

कवि, तुम कहाँ जा रहे हो ?—इस जिज्ञासा का उत्तर चिरकाल से दिया जा रहा है। व्यास-वाल्मीकि, होमर और वर्जिल, कालिदास और भवभूति, तुलसीदास और सूरदास, शेक्सपियर और मिल्टन आदि महामनीषी कवि-गण शत-शत कंठ से इस प्रश्न के समाधान में लगे रहे हैं। उन्होंने नाना स्वर और लिपियों में, विविध छन्द और लय में, इस अतृप्त उत्सुकता की परितृप्ति की चेष्टा की है। अपने हृदय को उन्होंने बूँद-बूँद करके निचोड़ दिया है। उपमाओं, रूपकों और उत्प्रेक्षाओं में उन्होंने कहने से क्या छोड़ा है ? परन्तु क्या वे कह सके हैं ? क्या वह सनातन जिज्ञासा आज भी ज्यों की त्यों नहीं बनी हुई है ? सच पूछो तो वैदिक मानव का यह प्रश्न कि कवि, तुम कहाँ जा रहे हो ? बीसवीं शताब्दी के मानव का भी प्रश्न है। हम जहाँ-तहाँ अवसर मिलते ही पूछ उठते हैं—कवि, तुम कहाँ जा रहे हो ? रवीन्द्रनाथ 'गीतांजली' लाकर हमारे सामने रख देते हैं। पन्त, 'प्रसाद', 'निराला' और महादेवी में से कोई छायावाद ले आता है, कोई रहस्यवाद—कोई कुछ, कोई कुछ। यथा-शक्य सब कुछ प्रस्तुत करके वे इस चिरन्तन समस्या का उत्तर देने की चेष्टा ही तो करते हैं। हालावाद और

प्रगतिवाद भी अपने अपने ढग से कवि की प्रगति को बताना चाहते हैं। सच तो यह है, कि इसे खोल कर नहीं रक्खा जा सकता और यदि कवि इसे खोल कर रख सके तो वह कवि ही न रहे। सारा साहित्य समस्त शिल्प कलाकार के इसी प्रयत्न से पवित्र, अनुप्राणित और रमणीय है। अजन्ता और इलोरा के चित्र-शिल्प में हृदय की इसी उडान को अकित किया गया है। ज्यों ज्यों कवि अपने को स्पष्ट करने को चला है त्यों त्यो वह अस्पष्ट होता गया है। उसकी वाणी उसी कम से दूरागत संगीत की क्षीण स्वर-लहरी का रूप धारण करती गई है। इसीलिए कवि और कलाकार के सामने श्रद्धा से बारबार सिर झुकाकर भी लोक-हृदय उसके साथ पग मिला कर अधिक दूर चल नहीं पाया। लोक जीवन के लिये कवि कवि ही रह गया है, और रह जाना ही कवि और काव्य एव लोक-जीवन सबके लिए ठीक हुआ है।

आज हम आलोचना प्रत्यालोचना करके उस पुरातन प्रश्न का समाधान पा लेना चाहते हैं। प्रत्येक कवि की शैली मे किसी न किसी वाद की स्थापना करके हम कवि की अभिव्यक्ति पर भाष्य प्रस्तुत करते हैं और अपनी समझ से कवि और काव्य के लक्ष्य को पा लेना चाहते हैं। हमारा समालोचक अपनी ओर से काव्य की नई से नई परिभाषाएँ करता है। अबतक की अपूर्णताओ के ऊपर तैर कर वह उस रहस्य को अनावृत कर देना चाहता

है जो स्वयं कवि के द्वारा नहीं हो सकता है। अपने बुद्धि और हृदय के योग से यह दृश्य गहरे उतर जाता है और एक-एक तार को हिलाकर कवि के मनोनीत आदेश को खोज करता है। परन्तु समस्त जानकारी के बाद भी कुछ अज्ञात और अगोचर रह जाता है। जो अगोचर के साथ अनिर्वचनीय भी है। यही साहित्य, शिल्प और कला का प्राण है। यह अनुभवगम्य तो है अभिव्यक्तिगम्य नहीं है। अथवा या कहें कि ज्यों ज्यों अभिव्यक्ति विस्तृत होती जाती है त्यों-त्यों यह सूक्ष्मतर होता जाता है। यह मनुष्य के अन्तःकरण को आनन्द की मन्दाकिनी में स्नान करा सकता है, पर रसस्रोत को जन्म दे सकता है। उसी को लक्ष्य करके एक स्थान पर 'प्रेमी' ने कहा है कि मेरा और कविता का वर्षों का साथ है पर मैं उसे जानने का दावा नहीं कर सकता। लोक हृदय काव्य को पढ़कर रो कर गद्गद् होता है। कवि नई नई रचनाएँ रचकर अपने को धन्य समझता है पर—कवि तुम कहाँ जा रहे हो ?—यह प्रश्न सदा होठों पर रुकता ही रहता है। यही चिरकाल से आस्वादन किये जानेवाले काव्य-रस को नीरस नहीं होने देता।

प्रस्तुत रचना और और औचित्य दूसरी रचनाओं का रहस्य यही है। इसी प्रश्न के उत्तर स्वरूप अच्छी-बुरी समस्त रचनाएँ हैं। मेरी इस 'नीहारिका' में कुहरे का धुधलापन ही विशेष है, सृष्टि और प्रकाश का यदि आभासमात्र इस

मे मिल जाय, तो लेखनी, कागज और मसि सभी सार्थक हुए, ऐसा समझूंगा । यह नीर-क्षीर-विवेक पाठकों पर है । मै तो इतना ही कह सकता हूँ कि मैंने अपनी ओर से कृपणता नहीं की । रक की झोली से जितनी निधि की आशा की जा सकती है वह उदारतापूर्वक लुटा डालने पर मैं तो कृपणता के दोष से मुक्त होगया ।

इस अकिंचन प्रयास के पीछे मित्रों और पूज्यों के जो प्रोत्साहन और आशीर्वाद हैं वे ही इसे पाठकों के सामने ला रहे हैं । यदि इसमे कुछ उन्हे ऐसा मिल सके जो कवि के सतत प्रयास मे एक कणतक बन सकने की योग्यता रखता हो, तो इसका श्रेय उन्हीं की शुभेच्छाओं को है ।

कुटीर बीकानेर सक्सेना

दीपावली, १९४१

सूची

समर्पण

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] पर [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]।

हार [illegible] पर [illegible] मन में
रक्खा [illegible] [illegible]।
[illegible] का [illegible] [illegible]
[illegible] मेरी [illegible]।

मेरा क्या, तन मन सब कुछ ही
तो है नाथ तुम्हारा।
अर्घ्य बिन्दु के लिए भला
संकोच भाव यह सारा।

नीहारिका

आह्वान

जैसे आता है उज्ज्वल रवि
जैसे आते हैं तारे
इसी तरह तुम भी आ जाओ
मेरे प्राणों के प्यारे

प्रबल चाह के झोंके में उड़
आओ मेरे श्यामल घन
अपने आच्छादन से भर दो
सूना मेरा हृदय-गगन

मेरे स्वप्नों के शिल्पी, आओ
मेरी निद्रा के संग
जागृति के छवि-मन्दिर में भर
जाओ तनिक सुनहले रंग

आलिंगन को बढ़े हुए इन
हाथों को छूने आओ
वंशी था कंधे पर मेरी
आकर तुम लहरा जाओ

अपना निठुर कहानी कहने को
आतुर है सजल नयन
तरसा जाओ झलक दिखाकर
ओ हमारे जीवनधन !

नियमों के कठोर प्रतिपालक !
नियमों को तज कर आओ
मेरे दव समय के सहचर !
असमय में ही आजाओ

ए मेर असवर्ण ! वर्ण का
आन में मत करो विचार
भावुक मेरे ! प्रणय जगत में
सभी हो रहा एकाकार।

जीवन के अवकाश मनोहर
बंधन हरने को आओ
पर प्रवृत्ति का मोह जाल तुम
अपने साथ लिये आओ।

चारण का गीत

भाइ रण को चला, बहिन !
तुम रक्षा बंधन लाम्रो तो ।
हम हँस तिलक करो, जय जाय
गीत विजय के गाम्रो तो ।

म्रोर चल जाने पर धनहर
देश सेविका धाम्रो ता ।
पग पग पर म्राहत वीरों पर
करुणाजल बरसाम्रो ता ।

रज्जुहीन ह पोत वीर हैं
सकट में—सुन पाम्रो ता ।
श्राम से कचो को ग्रपन
लकर रज्जु बनाम्रो तो ।

निकल निकल कर सरसिज-नयनी
सुकुमारी सब जाम्रो तो
पैरों में छाल पडने हों
किन्तु न तुम घबडाम्रो तो

श्रान्त क्लान्त प्रियतम को पाओ
जो रण में थक जाओ तो ।
त्रस्त ग्रस्तभय सैन्य सिन्धु में
ज्वार प्रचंड उठाओ तो ।

बिजली सी चमक, रणचण्डी
का वह रूप दिखाओ तो ।
प्रलय ग्रस्त हो शत्रु जयश्री
स्वामी को दे पाओ तो ।

आओ चुपके चलो नगर में,
स्वागत-साज सजाओ तो ।
द्वार हृदय का खोल, प्रेम का
दीपक मंजु जगाओ तो ।

रणदेवी, गृहदेवी बनकर
मुख पर मृदुता लाओ तो ।
आयें प्राणेश्वर जब, पथ में
मृदु मुसकान बिछाओ तो ।

प्रेमतीर्थ

चूर चूर होता जहाँ
सरिता का एक किनारा।
कभी बहा था कभी हमारे
पूत प्रेम की धारा।

जहाँ कलश लेकर कुलवधुएँ
भरने आतीं पानी।
पनघट की ईंटों पर अंकित
है वह प्रेमकहानी।

कन्याओं के खुनुर-मुनुर
करते कंकण रस-भीने।
वहाँ प्रेम का प्याला लेकर
बैठे थे हम पीने।

हराभरा था यह रसाल जो
सूखा ठूँठ खड़ा है।
सरु उतना था नहीं कि जितना
यौवन से आज जड़ा है।

उधर एक गानीर-कुंज था
लता वितान सुघर था ।
उसी झुरमुट में मानराग था ।
कहीं प्रिया का घर था ।

एक खँडहर में एक सुहाना
मंदिर और शिखर था ।
नीम और पीपल की छाया में
छाया ऊपर था ।

फूलों की डाली लेकर
लेकर पूजा की थाली ।
यहीं यहीं से आती जाता
था वह मंजु मराली ।

देवों का वरदान यहीं पर
प्राणप्रिया ने पाया ।
मैंने भी वरदान-तुल्य था
उसे यहीं अपनाया ।

गोपद चिन्हित मार्ग, दूब
से हरी भरी यह धरती ।
उन असंख्य स्मृतियों को मेरे
उर अंतर में भरती ।

मेरे प्रेमालय के कण कण
में है स्मृति पुरानी ।
जिसकी मधुर टीस से झरतीं
आँखें अविरल पानी ।

मातृभूमि की याद मे

अगनित अनुज जहा बसते
सुख-दुख की चादर तान ,
बरसा करते जहा डाल स
पिक कपोत के गान ।

पथ की ओर लगे रहते
दो आशापूरित लोचन ।
धूप-छाह ले जहा विचरते
अम्बर में श्यामल घन ।

सरिताएँ कलकल बहती है
झर झर झरते झरने ।
जहा झुण्ड के झुण्ड निकलकर
चलते है पशु चरने ।

जहा कृषकबालाएँ लेकर
हँसिया गाती जातीं ।
कल्याणि कोमल हाथो में
हरदम खेत निरातीं ।

योद्धाओं ने रक्त बहा कर
जहाँ रणस्थल सींचे ,
मन अटका है उड़ चलने को
उसी गगन के नीचे ।

किन्तु हाय कारागृह की ये
तुंग मुण्ड दीवारें ।
और निठुर निर्मम पहरे की
मर्मभेदिनी मारें ।

चिता चुन बैठा हूँ, अन्तर
का है एक प्रतीक्षा ।
यहीं आज निश्चय जीवन की
होगा अन्तिम दीक्षा ।

लो हे काग ! उठा ले चलना
चुनचुन हाड हमारे ।
और पवन तुम बहला देना
राख चिता की धारें ।

वहीं छोड़ना, जहाँ शून्य में
ज्वाल अग्नि अंगारे ।
घर हो मेरा खड़ा रक्त सा
लेकर भाव अंगारे ।

जिज्ञासा

हृदय सुमन की माला लेकर
भक्ति भाव में आऊँ।
गल में क्या तब नाथ! आपकी
प्रिय माला पहनाऊँ?

वशीकरण का मन्त्र मोहना
जाग्रत करूँ चिन्तन में,
मनमोहन का प्रेम विमोहित
तो क्या पाऊँ मन में?

नयनभवन में शान्तिरत्न की
मणिमय अञ्जलि लेकर,
क्या कृतकृत्य करोगे प्रियतम,
तब निज दर्शन देकर?

श्वासा को संयत करने में,
क्या पर्दा सरकाकर,
मुझे बजाते हुए मुरलिया,
शीघ्र मिलोगे आकर?

नयन मूँद नीचे निकुंज के
दृग साधना माधे,
बाहुपाश में भरकर क्या तुम
बोल उठोगे 'राधे'।

आशाओं का मन्दिर था

आशाओं का मन्दिर था
ऊँचा था नभ का छूता ।
उसकी कल्पना ही में
निर्भर नानी था कूना

कामना मगन   भगवान
सब भार दृष्टि थे पर !
आशा के दीपक झलमल
थे स्य-मगन के प्रेम !

रचना प्रेम का भीतर,
मुस्कान लिए जिह्वा पर !
मैना से बुला रहा था ,
इंगित कर दिन भर निशि भर !

पूजा में हृदय चढ़े थे
आंसू का अर्घ्य बना था !
उत्सुकता की वेदी पर
प्रार्थना वितान तना था !

अभ्रचुम्बी वह ऊँचा,
वह कलश इन्दु का धार ।
गिरकर निज आकृति खोकर
अब स्मृति के रंग सहार ।

खंडहर में उसके डाला
नैराश्य निशा में डेरा ।
बरसेंगी कभी मयूखें,
होगा क्या कभी सवेरा ।

युग का परिवर्तन होगा
मन्वन्तर का दिन होगा ।
मेरा यह अभिनव मन्दिर
भी होगा या फिर न होगा ।

बचपन

सब कुछ भूला, किन्तु नहीं मैं
उस बचपन को भूला।
डाली डाली में था निसकी
पड़ा मोद का झूला।

ऊँची-नीची पग बनी था
भ्रमित उमगा वाली।
इधर उधर सब ओर बिछी थी
मन की दूब निराला।

क्रीड़ा का उद्यान हमारा
आशाओं की डोरी।
सावन की वे मधुर मलारें
मा की प्यारी लोरी।

बात बात में सालों का
वर्षोत्सव मंजु मनाना।
मचल मचल कर नर्तन करना
ठुमक ठुमक कुछ गाना।

सुख का ताना, दुख का बाना
बुन-बुन जी बहलाना ।
प्यार दुलार भरे हाथों के
मीठी थपकी पाना ।

साँझ पड़े सो जाना
उठकर दूध भात ही खाना ।
तन में धूल लपेट फिरना
बातों में तुतलाना ।

कर कर भूल भूल जाना
पाना उसमें भिड़ जाना
बचपन की उस सरल याद में
है अनमोल खजाना ।

निवेदन

घन सा और गगन सा प्रियतम
मुझे बना लो पास।
जग का शल्य सेज पर मेरा
सुलगा है निश्वास।

क्षण क्षण के बन्धन में बन्दी
हैं ये आकुल प्राण।
बरसा दो इनके ऊपर प्रिय!
मंजु मधुर मुसकान।

तारों के चरणों में तुमने
किया देव! विश्राम।
आज अकिंचन की अंजलि को
मिले वही श्रीधाम।

है मृगांक गृहदीपक उस पर
अमित तुम्हारा प्यार।
वहीं बन सकूं ला दो जो मैं
मेरे यह सुविचार।

पवनदेव परिचारक हैं तव
मन्दिर के हे नाथ!
पीछे पीछे कहो कि आऊँ
मैं भी उनके साथ।

तन मन खोय विभव की है
अब कहाँ भूख या प्यास।
अब तो अटक रही है केवल
एक तुम्हीं में आस।

शेष अभिलाष

आता हूँ पर नाथ! साथ
अभिलाष लिये आता हूँ।
श्रीचरणों में यही एक
अवगुण विनय लाता हूँ।

जन्मूँ किसी रूप में फिर
तो यही रम्य भूतल हो।
यही ग्राम्य जीवन, सरिता का
यही मधुर कलकल हो।

यही स्वजन हों, यही सखा हों
यही मित्र हों प्यारे।
यही हितैषी यही बन्धु हों
यही कुटुम्बी सारे।

पशु पक्षी हों यही, यही
टूटाफूटा सा घर हो।
हरेभरे हों खेत यहीं,
गहरा नीला सरवर हो।

यही मनोहर अरुणोदय हो
यहीं साँझ की लाली।
यहीं सुनहले दिन हों मेरे
यहा निशा हो काली।

तना वितान तुल्य यह प्यारा
विस्तृत नीलाम्बर हो।
शीतल मन्द सुगन्ध प्रवाहित
यही वायु सुन्दर हो।

इसका पंख-कीट भी होना
मेरे मन भाता हो।
उडते हुए वायु में इसके
कण कण से नाता हो।

फिर फिर जन्म-मरण पुन पर
रहूँ न इससे न्यारा।
इसी देश में राजवेश से
रंक रूप हो प्यारा।

वे यदि आयें

मलयपवन बनकर आयें वे
प्राणों की अमराई में।
तो पिक बनकर कूक उठूंगी
उनकी सुधि बधाई में।

यदि आने ही लगें प्राणधन
मेरे घर वसन्त होकर
तो उनका सत्कार करूंगी
फूलों का विलास बनकर।

घनश्याम बनकर छायें वे
तो मेरे उर अम्बर में
उनके स्नेह सलिल को भरकर
लूंगी तो उर अन्तर में।

पर को किसलय कर लूंगी मैं
तुहिन बिन्दु यदि हों प्रियतम
सजनि, रजनि में आना चाहें
तो मैं बन जाऊंगी तम।

खलिहान के गीत पर

पथिक ! न होने दो पद ध्वनि से
सुप्त नीरवता भंग ।
भरने दो अपनी तरंग में
उनके मन का रंग ।

धान पक गये पर है कच्चा
उसका हृदय अबोध ।
देखो, कहीं न मिल पाये रुद्ध
उसे तुम्हारा शोध ।

अज्ञाता है भोलीभाली
उठा रही खलिहान
तान-तान में लुटा रही यह
मीठे मीठे गान ।

कैसी कसक, मम पीड़ा की
कैसी मृदु मनुहार ।
भरती रोम रोम में फैला
है वह सुखद खुमार ।

कन्यालय की मर्म-कथा सा
उपत्यका का राग
लोट लोट कर, गूँज गूँज कर
छहराता अनुराग ।

गत शत भावों में व्यञ्जित है
कृषक-सुता के शब्द ।
अन्वित वर्तमान में करते
कितने विगत शताब्द ।

गायन का है विषय मनोरम
सुख दुख का संसार ।
पद पद पर चित्रित होते हैं,
नारी नर गृह द्वार ।

अहा पथिकवर, शैलशृंग से
अचल रहा गह मौन
अभिनव स्वर लहरी निर्झर में
है न कहो सुख कौन ?

प्रेम की याद में

फूलों को चुन लिया न जाने
मन मधुबन से किसने ?
रातों को रच लिया सुनहले
लेकर अपने सपने ।

मेरे दर्पण की परछाईं
चुरा लेगया कोई ।
कहाँ गई अरमान भारती
मेरी हाय मँगाइ ?

कन गगनगगा का मेरी
मधुमय मञ्जु सलोना
सुरभित करने गया कहा
किस हृदय देश का कोना ?

किस वागुर की मृगी बन गई
मेरे सुख की [illegible]
किन चरणों पर लोटेगी हा !
मेरी यह दरमाना ?

छवि जो छलक उठा था मेरी
अलस भरी पलकों में
पारिजात की कलियाँ सी जो
इन मेचक अलकों में

वे कमनीय रचना मेरी
आभा की वर किरणें,
किन नयनों की पुतली में हा !
गई बिखर कर तिरने ।

कौन करेगा दूर अराजकता
इस मर जग की ।
उस बरजोर चोर से रक्षा
होगी क्योंकर मग की ?

उनका आना

सखि, प्रात हो रहे किन्तु वे
आये कभी न मेरे घर।
यह कैसा आना है उनका
कैसा है उनका अन्तर!

रह जाना निर्माल्य अछूता
सुमुखि, सजाई थाली का
किन्तु न आना हो पाता उन
प्राणोपम वनमाली का।

घना मनोहर रूप माधुरी
रखाता हूँ नित प्रति सजनी!
पथ निहारने रम जाती हूँ
रीत-मानस की रजनी।

कैसी तो भोली सूरत है
कैसा किन्तु कठोर हृदय।
मुग्ध हमारे मन को तो भा
जाते हैं वे सरल सदय।

सखि, कुछ जादू सा करती हैं
उनकी शरमाली आँखें।
नहीं बताओ तो कैसे वे
मनमानी कर कर रातें।

मैं

मैं हूँ नील गगन का पक्षी
दूर स्वर्ग है घर मेरा।
मुक्त पवन वाहन पर चढ़कर
देता हूँ जग का फेरा।

हरित श्यामघन वन हिम गिरिवर
हैं मेरे विश्राम सदन।
शिशु, शशि, पुष्प, पराग राग में
बसा हुआ है मेरा मन।

मेरे रम्य कलेवर में है
तारावलि अनन्त लोचन।
अतुल अलौकिक प्राप्त हुआ है
जराहीन अक्षय यौवन।

कादम्बिनी हिंडोला बनकर
मुझे झुलाता है निशिदिन।
नभगंगा धोती प्रमुदित मन
य पादुज मम चरण नलिन।

रूपसिन्धु के मोती चुनता हूँ
उस मानसरोवर पर,
जो अगम्य है नहीं पहुँचते
जहाँ गिरा के वागीश्वर।

वातचक्र भर पंखों के
कंपन से उठते जग में।
उच्छ्वासों में घुम-घुमकर रवि
धूमिल हो गिरते नभ में।

किन्तु नया हो जाता हूँ मैं
मन की करता रहता हूँ।
निखिल विश्व की दया-मया पर
रज न सिर पर सहता हूँ।

दुख के शोक में

उस वसन्त में रंग आया था
उद्भासित चित्रित नवरूप ।
जलती हुई चिता पर तेरा
अर्घी था ऐ हृदय सुमन !

आखिर समझ लिया था, जीवन
के वसन्त का अन्त हुआ ।
और कुछ नहीं अन्धकार ही
मेरे लिए अनन्त हुआ ।

सोचा था रो रोकर जलमय
एक समुद्र बना दूंगा ।
आहों और विलापों के घन
से जीवन-नभ छा दूंगा

पर विषाद धन बांट लिया हा
हन्त ! प्रकृति के कण कण ने ।
मंद मन्द बहते समीर ने,
फूलों ने, वन-उपवन ने ।

वारिद रोने लगे गिराकर
अतुल अश्रु मुक्तक माला ।
'कलकल' में कल्लोलिनी ने भी
छन्द व्यथा का रच डाला ।

'गुनगुन' में मलिन्द नित गाने
लगे शोक के गीत नये ।
निर्जनता ने छेड़े निस्वन
सकरुण राग विहाग नये ।

तारा ने 'झलमल' में मन की
व्यथा अपार सुना डाली ।
शोकाकुल हो गई मेदिनी
करके वदन निशा काली ।

निश्वासों आहों में सागर
ने भी वाष्पपुंज छोड़े ।
ओस मिस से नहा रहे थे
नगें लता तरुवर थोड़े ।

गिरिश्रेणी निस्तब्ध होगई
प्रस्तर की प्रतिमा बनकर ।
उसी विषाद-गीत को मेरे
गाते हैं निर्झर झर झर ।

तू भी गया प्यार भी तेरा
सुख-दुख दोनों ही बात ।
किसको लूँ अवलम्ब हाय
है मेरे उभय पार रात ।

लिपटी हुई लताएँ तरु से
उड़ते हुए विहग ।
नील गगन में इन्द्र-धनुष के
प्यारे प्यारे रंग ।

आश्रम के बाहर मृगछौनों की
सशंक सी दृष्टि ।
कमल-करों से चित्रकला का
भ्रमर तुम्हारी सृष्टि ।

सम्मुख सब आ जाते हैं उस
गिरि - श्रेणी के साथ ।
वेणी के पुष्प-गुच्छ औ
कुशल तुम्हारे हाथ ।

किन्तु न जाने क्या गाते थे
मीठा मीठा गान ।
विस्मृत सी, खोयी-सी, मन को
दुखा रही वह तान ।

आकर्षण

"मूर्छना लोक में सहसा
जब गान हो चला निश्चल।
तब अर्धभाग नौका का
उदरस्थ कर चुका था जल।

'पर दृष्टि भ्रान्त नाविक की
उलझी थी जाकर तटपर।
वह डूबा, लो वह डूबा,
वह डूब गया हा पटपर !'"

আন্দোলন

अनुरोध

मुझे सुनाना हो तो प्रियतम
गाओ ऐसा गान ।
हो जाए अनुभूति जगत का
मेरे तन का प्राण ।

आहत के अणु वमन मे
छटपटा उठ यह देह ।
रोगी के क्रन्दन मे छलछल
तरल बह चले स्नेह ।

दुखिया के दुख में कातर,
मिल जाये जीवन स्रोत ।
निरवलंब का अवलंबन हो
इन श्वासों का पोत ।

वञ्चिता

हर्षित हुई न निशा, उषा का
फैला नव आलोक।
मलिन प्रदीप लिये लेने हो
तिस पर भी हा शोक!

दुखिया का सर्वस्व तुम्हारा
होगा पहला ग्रास।
किसे ज्ञात था उस अदृश्य का
यह निष्ठुर उपहास।

शीर्ण कुटी का तम अनन्त यह
होगा कैसे दूर?
कैसे बन्द द्वार का मुझको
पता चलेगा क्रूर?

खोज सकूँगी कैसे अक्षत
मैं निबल निरुपाय।
क्या पूजा के पत्रपुष्प भी
पड़े रहेंगे हाय!

परदा

नहीं मिला एकान्त कभी,
दिन दिन गिनते बरसों बीतीं।
सन्ध्या के उपरान्त अंधेरा,
बीत गईं रातें रीतीं ।

उस अतीत के क्षण क्षण में
आशा के कण कण अन्त हुआ
मन की सभी उमंगों का
मन में ही कार्य समाप्त हुआ।

घूंघट का अन्तर दोनों को
अन्त समय तक शाप बना।
प्रेम प्रसून खिला कोने में
वहीं होगया वह सपना ।

वह हार

कहा था, सध्या के उपरान्त
मिलेंगे पुर-भवन के तीर।
फलित कलियों मे गूथा हार,
मधुर आशा से हुई सवार।

न आये किन्तु निठुर वे हाय !
रहा खूटी पर लटका हार।
हँस पडी कलिया मुस्करा दग
बन्द कर चली गई मे द्वार।

रहस्यवादी

घड़ियों में युग का परिवर्तन
घट में सागर का भरना।
शुष्क कठोर शैलखण्डों का
बह चलना होकर झरना।

चिर असीमता का सीमा के
साँचे में आ ढल जाना
जग अनित्यता का सुन्दर
शाश्वत स्वरूप रख इठलाना।

रेखा लीन बिन्दु में होना
किरणों का शशि को पीना।
तड़ित हास्य पर, असख्यता का,
एक इकाई के जीना।

आजाना विराट् का कर में,
सुमन स्वर्ग का बन जाना।
सीपी का मोती में अपने
रूप रेख गुण को पाना।

अणु में अखिल विश्व का बसना
स्वर्गों का हिम जम जाना।
उस रहस्यमय का कण-कण में
हँसना और सिहर जाना।

मन की आवों मे लगता है
मुक्त हृदय-वातायन कर।
जग में, अनिल अनल अनर में
विषम तान में समतारवर।

वह है कौन—मनाषा, कवि
तक्षक, बुध, चित्रकार, शिल्पी,
हेमपात्र में ढालढाल कर
अनुभव सुरा रहा जो पी ?

वंचिता मा से

अयि! मा क्या होगया तुम्हारे
कोमल शिशु को आज ?
किसलय से अधरों का क्योंकर
लुटा हुआ-सा साज ?

किसने म्लान खींच दी रेखा
उसके अरुण कपोलों पर ?
किसने मुहर लगादी है मा
उसके तुतले बोलों पर ?

कौन छीन लेगया अचानक
हास्य विभव अनमोल ?
किसने तरल लोचनों की वह
हर ली छवि मधु लोल ?

रेशम से केशों का गुच्छा
क्यों सोया निस्पन्द ?
मृदु मुसकान लूटने को क्या
डालेगा न कमन्द ?

चपल उंगलियां नहीं करेंगी
क्या फिर मानालाप ?
अस्फुट कलियां बिखर जायगी
हा यों हा चुपचाप !

धूल धूसरित हो न करेगा
क्या फिर गोद पवित्र ?
क्रूर करों ने मिटा दिया हा !
स्नेह लोक का चित्र ।

था सुहाग की कल्पलता का
पारिजात अभिराम
स्वत चाहता था विकास से
पूत अटल विश्राम ।

था पवित्रतम स्नेह सुधा का
मन में समझ अपात्र ।
स्तब्ध निशा में तोड़ चला वह ।
जग में बंधन मात्र ।

अयि मां, मुझे बताओगी क्या
इस रहस्य का हाल ?
क्यों मुरझाया पड़ा हुआ है
रम्य फूल सा लाल ?

स्मृति

मानों आँखों में छिपकर
क्या जाने क्या रोती है?
मथकर क्या हृदय सरोवर,
दरसा देता मोती है।

निर्झर के रसमय स्वर में
मिल जाने की आतुरता।
फूलों के मौन निलय में
लय होने की व्याकुलता।

हँसते सुमनों में सुनती
रागिनी विषादित मन की।
पुलकित उपवन में गुनती
नीरवता शून्य विजन की।

तारावलियों की जगमग
नाहार शोक से [illegible]।
कौमुदी-स्नात सुन्दरता
क्यों जाती है उकसाय?

स्वप्नों से अब न सिहातीं
ये मीन-मृगों की उपमा ।
स्मृति में विस्मृत हो बैठीं,
अपलक प्रस्थापित प्रतिमा ।

चित्रांकण

जन कौन भाव मे मन
खींची थी वह रेखा ।
जब मधुर कल्पना का किस
दिव्यदृष्टि ने देखा ?

किस शकुन्तला की रचना में
रुचिर तूलिका मेरा
चली जारहा था निर्भार किस
रूपराशि की प्रेरा ?

किस अमर चित्र के अङ्कन का
रसमय प्रयास था मेरा ?
क्यों मिटा दिया रे, बतला क्या
जाता जाता था तेरा ।

दुहिता के शोक में

मैंने कहा सुना पर तुमने
किए छिन मेरे प्राण ।
मन्द स्पन्दित दीपक का जब
होता था निर्वाण ।

अब प्राचीर तिमिर का उठकर
खड़ा हुआ सब ओर ।
नभ में पृथ्वी तक दिगन्त में
जिसका ओर न छोर ।

दृश्य अदृश्य हो गये सारे
नहीं किरण तक एक ।
क्या तारागे रहने दो वह
निष्ठुर अपनी टेक ।

अन्धकार में सोने दो
मेरी बच्ची का मौन ।
चिर निद्रा के पास स्नेह का
करे मूल्य हा कौन ?

जन्म लिया पर पा न सके,
आजन्म पिता का प्यार।
वंचित शिशु के लिए तुम्हारा
यह निष्फल उपहार।

नीले होठों पर रखते अब
सजल स्नेह की छाप।
जीवन में क्यों छिपा लिया था
मधुर भाव चुपचाप।

सदा सभीत रही जो लखकर,
वक्र तुम्हारी दृष्टि।
अश्रुवृष्टि अब कर न सकेगी
प्रियतम, उसकी सृष्टि!

विरह मुझे कर्तव्य बना है
सिखा रहा है सीख ।
द्वार द्वार पर फिरूं मांगती
विश्व प्रेम की भीख ।

पदार्पण

कितने पाटाम्बर डाले थे
गलियों में नित स्वागत को ।
रही प्रतीक्षारत निशि-वासर
मनचीते अभ्यागत को ।

पारिजात की वन्दनवारें
कुसुम-करों से ले-ले कर ।
गर्वित मन से सज्जित की थीं
मणि निर्मित गृह द्वारों पर ।

मोती की लड़ियों के बदले
तारों की अनुपम माला ।
चन्द्रकला के रुचिर सूत्र में
गूँथ सजाई थी बाला ।

पाटल पद पद्मों से पावन
होगा हर्म्यविलास नहीं ।
जीवनधन जगजीवन होंगे
यह भी था विश्वास नहीं ।

पल पल करते वासर बीते,
वासर बीते, युग बीते,
नलिन नैन पर सतत हमारे
रहे अश्रुजल ही पीते।

उष्ण वाष्प से स्निग्ध हुआ
कुछ गर्वभाव यौवन धन का।
तव अपांग में लज्जित होने
लगा रूप चन्द्रानन का।

दृग पथ से आते जाते थे
वे अबाध मधुर गति से।
करुणा के शुचितम मन्दिर में
प्रियतम शोभन रतिपति से।

सन्देश

आशा के भग्न शिखर पर
दीपक यह कौन जलाता ?
टूटी वीणा को लेकर
पवन स्वर कौन बजाता ?

उजड़ी शोभा में किसने
लाकर यह सुमन खिलाया ?
किसके विक्षिप्त हृदय में
यह भाव विपर्यय आया ?

कल था जो अब न रहा हूँ
कह दे यह कोई जाकर ,
सूखा हूँ तरस तरस कर
होगा क्या रस बरसाकर ?

सौंदर्य

बहता है सौंदर्य-सुधा उस
राजमार्ग के तट पर।
जहाँ खड़ी भिक्षा को दुखिया
अचल मलिन वस्तर।

रूप कुरूप हुआ जाता है
उस शोभा के आगे।
जहाँ अकिंचन के धन से शिशु
रात सोते जागे।

सुन्दरता की सीमा देखा
उल्लंघित उस थल है।
श्रमित कृषक के कृश शरीर ने
जहाँ बरसता जल है।

है अभिराम अमृत का झरना
उस अछूत के घर में।
छूकर जिसे अपावन पावन
होते हैं क्षण भर में।

बरस रही अविराम मोहनी
उस छाया के नीचे ।
पतिता के अनुताप कणों ने
जहाँ कमल दल सींचे ।

हैं अनुपम वे विश्वविमोहन
उन्मत्तों की टोली ।
मातृभूमि को चूम रहीं जो
हँस हँस खाकर गोली ।

है शोभा का सार झलकता
उस नीरव निर्जन में ।
जहाँ धूल में सुमन मिल गया
रखकर मन की मन में ।

उपेक्षित का प्रयास

इतनी ऊँची उगे गगन में
मेरे मन की आह।
छायापथ प्रज्ज्वलित हो उठे
मिले न उनको राह।

विस्मृत की सुधि मात्र कराना
भर हो अपना लक्ष्य।
फिर उनकी इच्छा वे जिसको
रक्खें नयन समक्ष।

हमें बहुत है विरह वेदना
यदि वह उनको भावे!
शल्य सेज भी बिछा सकें
तो सुखमय निद्रा आवे!

यदि

यदि दो पत्र दिये होते
उड़ आने को चरणों के पास।
हो जाता मकरन्द हमारे
हृदय-कुसुम का सफल प्रयास!

हँसती हुई पखुरियाँ होतीं
झरता होता मृदु मकरन्द!
अर्पित होजाता चरणों में
पुष्पित जीवन का आनन्द!

उनका व्यवहार

मैंने दुख की बात कही थी
सखि, इतने दिन बाद,
तो भी उनका मन न पसीजा
वे कैसे मनुजाद !

कहीं हृदय भी है या उनकी
आँखें ही है काया !
रूप मात्र देखते हाय है
भाव न उनको भाया !

भाव देख लेते, फिर मुझको
ठुकरा देते खाली !
रूप दिखाना था मन मेरा
मेरी कौन कुचाली ?

मुग्धा से

प्रेम मंदिर में खेला रानी,
सर्व सुहाते खेल ।
इस विभव में सुना कहाँ है
जीवन का रस मेल ।

भरता, भरता पात्र पूर्ण से
रस हो सरस सकाल ।
रीते घट से कहाँ बुझेगी
तृष्णा की खर ज्वाल ?

छिन्न-तार वीणा से कैसे
फूटेंगे मृदु बोल ।
सुन्दर मिलन क्षणों में भद्रे !
मधुरस तो लो घोल ।

पदार्पणवेला

आसू का लड़ियों का हो मृदु
एक हार पहनाने का
संताप और उछ्वासों की
छाया हो तपन मिटाने का।

ताना हो एक क्रन्दन को
घर में, आँगन में, राहों में
सौ बहनों की हो व्यथा मिली
बिखरी निराशामय आहों में।

पृथ्वी हो सुमनों से मंडित
गर्जित हो सन्नद्ध आशा।
पावक से मुख में चढ़ती हो
रह रहकर रुद्रामयी भाषा।

बच्चों का प्यार हाथ में ले
दुर्दमन अत्याचारों के।
भरते हों पुत्रियाँ, भवन, कुल
अविरल विलाप में नारी के।

बंदिनी सशोका सीता की
बीतें रातें अशोकवन में।
दुख की हा काली घटा घिरी
मन में, प्राणों में, जीवन में।

लक्ष्मण से भाई मूर्छित हों
सूना हो सब घर-द्वार मुझे।
बस उसी समय तुम आ जाओ
लेने को दुख से पार हमें।

हम-तुम दोनों हों रोते हों
रोता हो देख संसार हमें।
पग उठता एक बाद में हो
मिलता हो पहले प्यार हमें।

हंसदूत बनकर आया है
अपना हृदय सभाला ता ।
प्रेषित किया प्रिया ने मंजुल
प्रेम निवन्न पा ती ता ।

अपने मन की भी कह डाला
अन्तर खोल दिखा ला ता ।
सुख का दुख में पाल चुके हा
दुख सुख में नहला लो ना ।

प्रस्तुत बिनया पार्थ लक्ष्य
भेदनकर नभ में देखो ता ।
शौर्य और साहस की सुन्दर
मूर्ति एक अवरखा तो ।

श्रीहत विरस विरोधी दल था
उधर मलिन मन पड़ा ता ।
भार नदी कृष्णा क मुख पर
इधर उमड़ता देखा तो ।

सखि, वे कृष्ण और वे बातें
उनको आज विचारा ता।
हर हर कुचों, फिर जमुना
जल को चल निकारा ता ।

कविता का मंदिर

शापमुक्त होगया यक्ष अब
मेघ न ले जाते सन्देश ।
यद्यपि अलका का वैसा ही
बना हुआ है रम्य प्रदेश ।

बहती वेत्रवती वैसी ही
हराभरा है मग पर्याप्त
उज्जयिनी के प्रासादों की वह
लीला पर हुई समाप्त ।

मधु मालिनी तट अरण्य में
पिता कण्व के आश्रम पास ।
कहाँ माधवी लता? कहाँ वह
मृगछौनों का सरल विलास?

ऋषिकन्या शकुन्तला का वह
अभिनय अब हो चुका व्यतीत ।
फिर दुष्यन्त भूप का अंकित
होगा वह न प्रणय-संगीत ।

दमयन्ती के उस विलाप का
था हो चुका उसी दिन अन्त।
प्रियतम के चरणों का जिस दिन
मिला अचानक प्रेम अनन्त॥

वन प्रान्तों से, लता गुल्म से,
कौन कहेगा मन की बात?
व्यथित प्रियतमा की पीड़ा का
हाल होचुका नल को ज्ञात॥

कृष्णा की वेणी को कसकर
विदा होगया स्वर्ण सुयोग।
मुक्त कुन्तला करने का अब
फिर न मिलेगा वह संयोग॥

लेकर कृष्ण न अब आयेंगे
फिर से कहीं संधि प्रस्ताव।
फिर से कुरुक्षेत्र में होगा
नहीं युद्ध का आविर्भाव॥

पंचवटी के शिलाखण्ड पर
गोदावरी नदी के तीर,
करुणामयी जानकी का पद
परस चुका संचित दृग-नीर॥

विहगवृन्द दण्डकारण्य के
सुन रघुपति का मम विलाप ।
उच्छ्वासों से भूख भूलकर
व्यक्त कर चुके हैं संताप ॥

गंगा के चरणों में अर्पित
मुरली का हो चुका गुमान ।
कुञ्जकुञ्ज की उत्सुकता का
रूप होगया है वह म्लान ॥

ब्रज बालाएँ गूँथ गूँथकर
चढ़ा चुकीं अपने उपहार ।
उन सब का सर्वस्व समर्पित
है हो चुका सहस्रों बार ॥

शिप्रा के उपकूलों पर जा
सुना गया सकरुण संगीत ।
मम क्रौञ्च का वही सुकवि की
वाणी में हो चुका प्रणीत ॥

वे रसस्रोत अभी जारी हैं
झरनों से झरते दिनरात ।
संचित है उनमें वसुधा का
विभवरूप नव काव्य प्रभात ॥

किन्तु बदल कर आज हमारे
हृदय होगये हैं विपरीत ।
विस्मृत सा होगया उन्हें सब
जीवन का वह रम्य अतीत ॥

अब तमाल के तले कहां सुन
पड़ती है वंशी की तान ?
होता कहां प्रतीत हमें अब
यमुना का वैसा कलगान ?

राजहंस पर होती है अब
नहीं महाकाव्यों की सृष्टि ।
चन्द्रकिरण है वही किन्तु अब
करती नहीं सुधा की वृष्टि ॥

है कविता का क्षेत्र हमारा
आज हुआ यह पर्णकुटीर ।
जहां क्षीण अंचल में माता
पोंछ चुकी है दृग का नीर ॥

है कवित्वमय आज होरही
विधवा के आंसू की धार ।
पुंछता हुआ भाल का सेंदुर
व्यक्त कर रहा है उद्गार ॥

भावों का मंथन होता है
उस दीना हीना के द्वार ।
प्रतिध्वनि होकर गूंज रही है
जिसकी मौन अनाथ पुकार ॥

होकर जो उत्सर्ग अनल में
हरते हैं दुनिया का शीत ।
सचमुच है उत्कृष्ट काव्य उन
पत्तों का मर्मर संगीत ॥

उस सहाय्यहीन बचपन में
हैं कविता के भाव अपार ।
जिसकी रक्षा का पाया है
नील गगन ने यह विस्तार ॥

जिसे धूल के रतनपलँग पर
देती है वसुधा विश्राम ।
कवितादेवी का पवित्रतम
बना हुआ है वह श्रीधाम ॥

जहां कृषक का आशा धन
अंकुरित हुआ अंकुर के साथ ।
वहीं खेत में बुना रहा है
भावमयी कविता का हाथ ॥

ठूँठापन है यहाँ जरा
जर्जर शरीर यह थमी महान।
जीवन दिन के बाद शान्त है
सन्ध्या का पावन अगार ॥

जहाँ दासता के बंधन में
बँधे हुए हैं कोमल हाथ ।
निष्ठुरता से पिसे जा रहे
जहाँ हृदय पत्थर के साथ ॥

करुणा का कर जहाँ खींचकर
स्वार्थ छीन लेता सर्वस्व ।
दोनों का अस्तित्व जहाँ पर
मर्दन करता है तामस ॥

जहाँ शोषण का होता है
घन लेखनी से संहार ।
जहाँ असंख्य निरीह जनों का
होता है अपहृत प्रहार ॥

वहीं क्रूरता के अभिनय में
पाकर मर्मान्तक संताप ।
बन कर मोती बरस रहे हैं
सजल नयन के काव्य कलाप ॥

आओ कविवर ! चलें व।
उस दुनिया के लायें सन्देश।
जहाँ हृदय का पड़ा हुआ है
नर कंकाल मात्र अवशेष ॥

जिसके जीवन की संध्या में
गोधूली का शान्त निवास ।
पृष्ठ आलोड़न करता अविरल
अंकित निज सकरुण इतिहास ॥



वाञ्छा

निर्झर बन कर मेरा करो तुम
मेरे जाग कुञ्जों के तीर।
बरसो मेरे हृदय में मेरे
होकर श्यामल घन के नीर ॥

भूला करो कुञ्ज में हँस हँस
बनकर रुचिर प्रसून नवीन ।
मेरी विरह-व्यथा रजनी के
बना करो तुम शशि अमलान ॥

मैं चकोर हो जाऊँ प्रियतम,
तुमको चन्द्र निरखने को ।
भ्रमरी बना फिरूँ उपवन की
सुमन सुमन रस चखने को ।

कलिका बनकर चरण प्रान्त की
रक्खूँ सिर पर पावन धूल ।
जल शैवालिनि होकर पालूँ
प्रणय सरोवर का उपकूल ॥

मुझमें तुम मैं तुममें प्रभुवर !
हो जायें एकान्त विलीन ।
जग-जंजाल विराग राग में
रहें सर्वदा मगन लीन ॥

जीवन का अभीनन्दन

सुख स्वप्नों का एक मपदा
मग पथ में भूल पड़ी हो।
काँटों की कुटिया में भेरा
लिये प्यार के फूल नहीं हो।

देखा हृदय तुम्हारा रोना!
अन्धकार में स्वर्ण किरण ना।
तुम धरती हो उसे कि जिसका
त्याग छुरा जा विदलित नभ सा

बोलो, बाला, प्रिय! कौन-सा
रम्य प्रलोभन तुमने पाया?
अपनी आँखों से जीवन में
जो मैं अबतक देख न पाया॥

तुम हो दिव्य दया की देवी
किन्तु यहाँ क्या काम तुम्हारा?
जहाँ न सुख की एक रश्मि न
कभी भूल कर दिया पसारा!

अब भी द्वार खुला है प्रमदे !
देखो, तुम पीछे फिर जाओ।
इस दुर्गन्धयुक्त रौरव में
बस, आगे मत पैर बढ़ाओ ॥

मुझको यहीं पड़ा रहने दो
मेरी छाया को मत छूना।
तुम्हें अपावन होते लखकर
होगा जीवन का दुख दूना ॥

किन्तु अरे! यह क्या तुम तो फिर
बढ़ी इधर ही को आती हो।
क्या जाने क्या प्रेम सुधा को
नयनों में ही बरसाती हो ॥

जब है यही तुम्हारा निश्चय
तो फिर आओ प्रिये हमारा।
हम भी कसकर अलिंगन में
भरलें कोमल देह तुम्हारा ॥

तन का तन से, मन का मन से,
ऐसा मिलन करा लो रानी।
भूले कभी न जीवन भर
दुनिया का अपना मिलन कहानी ॥

जाने कौन, कब हो जायेगा
क्षण भर में सुख स्वप्न हमारा ।
उसी गलित रौरव का भीषण
एक प्रवाह बहेगा सारा ॥

अभी अकेला डूब रहा हूँ
जिस दुर्भाग्य सिन्धु में पाले !
उसने कभी न देखे हैं जीवन
के ऐसे क्षण मतवाले ॥

उसके लिए प्यार की अभिनव
दुनिया लेकर तुम आई हो ।
जीवन के उत्तप्त मरुस्थल
में तुम सघन घटा छाई हो ॥

बुझती दीपशिखा को तुमने
जीवन का वरदान दिया है ।
निश्चय जानो मैंने भी तो
कोई पुण्य महान किया है ॥

अतुल कृपा का बदला रानी !
चुका सकेंगे जब ये चुम्बन,
तब जानूँगा सार्थ हुआ है
जीवन का नूतन अभिनन्दन ॥

कुटिया की शोभा

कुटिया की छवि में कैसा है
विश्वविमोहन रूप।
जहाँ शिला पर गाता बालक
मोद वाल अनूप ॥

माँ हँस कर रख लेती उसको
अंचल में सविनोद।
गाल चूम कर भरती फिर
पे प्यार में गोद ॥

लतिका छप्पर पर लहराता
हरा रंग अभिराम।
सुमन झूमते हुए नाचते
सुरभित रुचिर ललाम ॥

श्यामा जब रसाल पर चढ़कर
करता वहाँ विराम।
मुझ पर रख देता क्या
भी का मधुर विलास।

खड़ा निकट छाया में होती
धेनु सुन्दर नैन ।
तनिक दूर पर विमुख धूल में
करता वृषभ चैन ॥

पीछे खड़े मगन मन गाएँ
घर का लिये हुलास ।
अलसी के नीचे फूलों में
भरता रम्य विलास ॥

झाली डाल सरल बालिका
फूलों सी अम्लान ।
बीन रही बैठी हरियाली
अपनी धुन में लीन ॥

लाकर मटर डाल देता है
भारी बोझ किसान ।
स्वागत को बाहर आती
कृषकवधू छविमान ॥

जला चानर की रोटी पर
रख सरसों का साग ।
स्वाद का रंग बसा है
स्नेह सरल अनुराग ॥

आजाता दुहिता ढलाग कर
नातों की दावार।
हो जाता परिवार स्वयं तब
छोटा सा संसार॥

चकित स्वत अपनी रचना पर
होता है विधि मौन।
कुटिया का रजकण बनने में
है गौरवहत कौन?

विजय का मूल्य

'खाली गया तूणीर तीर
भाला टूट गई कटार !
क्षण में होने वाला है
सिर पर वज्र प्रहार ॥

यह सोचकर बढ़ा रहा था
ढाली सम्मुख वीर ।
बिजली सी चमकी सेना में
गिर सी गई लकीर ॥

मस्तक छिन्न भिन्न अवयव
रिपु लौट गया तत्काल ।
पड़ी गले में आ योद्धा के
प्रेयसि की भुजमाल ॥

मुग्ध प्रेम, उत्साह, पुलक,
गौरव गरिमा आनन्द ।
बारी बारी चूम रहे थे
दोनों के मुखचन्द ॥

कहा वीर ने प्रियतमा से—
"वह प्राणेश्वरि बाल !
अब इन शत्रुदलों का देखो
रणकौशल विकराल ॥

"यदि तुम यों ही रहो सामने
शक्तिमूर्ति अभिराम ।
युद्ध, युद्ध हा युद्ध—न क्षणभर
को हो कहीं विराम ॥

"मथ डाले तो शत्रुसैन्य को
दृग यही कटार ।
बने निषंग बने सर तीरों
का अक्षय भण्डार ॥

हर हर करके बढ़ा वीर धर
प्राणप्रिया का हाथ ।
पर हा उस दुर्दैव दुष्ट ने
दिया न उसका साथ ॥

वक्ष प्रिया का एक बाण ने
आकर किया विदीर्ण ।
गोदी में वह गिरी हताहत
एक लता सी शीर्ण ॥

पर पल में वह वीर दिखाई
पड़ा रुद्र का रूप ।
शत्रु-सैन्य के लिए भयङ्कर
लगा खोदने कूप ॥

किया पराजय शत्रु, जय श्री
भी पाई अनमोल ।
किन्तु गले में पड़ न सकीं
वे कभी भुजाएँ गोल ॥

अन्तर्वेदना

पुरवाई के साथ कसक उठता
भीतर का घाव सखी ।
मर मर कर जीती हूँ तो भी
होता किन्तु न स्राव सखी ॥

दुनिया को बतला देने में
अब क्या रहा दुराव सखी ।
अब जग में रह गई अकेली
और हमारा घाव सखी ॥

वह भी दिन था जब तन मन का
लगा दिया था दाव सखी ।
हार जीत में, जीत हार में,
थी तब दिल बहलाव सखी ॥

दुनिया थी रंगीन, और यह
नभ का नील तनाव सखी ।
ऊपर को उठता जाता था
मन का सुमधुर भाव सखी ॥

पृथ्वी मुझको स्वर्ग बनी थी
गृह नन्दनवन रूप सखी ।
दुख में सुख का भाव भरा था
वैसा एक अनूप सखी ॥

स्वप्न होगया आज हमारा
हाय ! अमृत का कूप सखी ।
ध्वान्त सिन्धु में डूब चुकी वह
स्वच्छ सुनहली धूप सखी ॥

मिश्री मन में घोल रही थी
जो कोयल की कूक सखी ।
वही आज बनकर चुभती है
दुखित हृदय की हूक सखी ॥

तुम सोचोगी है वह मेरे
यौवनमद की चूक सखी ।
मैं सुनती हूं, इस जग का है
केवल यही सलूक सखी ॥

किरण-करों से करता आकर
पहले शशि शृंगार सखी ।
औ' बनता अवतंस गले का
फिर तारों का हार सखी ॥

छन छनकर सिर पर भरते ह
प्यार और उपहार सखी ।
हन्त, मन में अंगारों में
हाता सब कुछ क्षार सखी ॥

जिस दिन अपने आप बन उठा
था प्राणों से राग सखी ।
तनिक छलक जाने से मदिरा
ने छोड़ा था भाग सखी ॥

जिन वसन्त फूलों में छाया
था जय स्वत पराग सखी ।
सोचा था जगने वाला ह
सोया अपना भाग सखी ॥

वही हुआ आए प्राणेश्वर
लेकर मृदु मनुहार सखी ।
चञ्चल पलपल, विहँसविहँसकर
भेंट हुई गृह द्वार सखी ॥

ललित लाज थी बसी दृगों में
दिल में प्यार अपार सखी ।
रत्नप्रभा से जगमग था उस
दिन अपना संसार सखी ॥

प्रथम मिलन में क्या जादू था
हुए नयन जब चार सखी ।
तो क्षण भर में रही मुग्ध सी
सकी न तनिक सम्हार सखी ॥

तन को, मन को और प्राण को
भूली मैं उस बार सखी ।
कितना सत्य और सुन्दर सा
था वह नश्वर प्यार सखी ॥

पानी सा बह गया एक दिन
मैं ही सब आलोक सखी ।
उस सपने की झलक कहाँ
फिर पाऊँ कभी विलोक सखी ॥

मुझ कोकी का प्राणसखा वह
कहाँ उड़ गया कोक सखी ।
श्वासों के झूले में झूला
करता है भय शोक सखी ॥

हम दोनों को विलग किया है,
है यह सब पाषाण सखी ।
अन्तर में है बिंधा उसी का
तेज नुकीला बाण सखी ॥

आह! आज पा जाऊँ जो मैं
प्रिय का वही कृपाण सखी।
चुभन और पीड़ा से भर लूँ
इन प्राणों का त्राण सखी॥

परिचय

कवि की निद्रा पर सोती हूँ
सरस्वती की छाया बन ।
वारिद में बसती हूँ होकर
चपला का दृढ़ आलिंगन ॥

अधरों में नित हँसती हूँ
मुसकानों में मुसकाती हूँ ।
बुलबुल का सुमधुर तानों में
थिरक थिरक कर गाती हूँ ॥

रम्य वनश्री हूँ वसन्त की
अमराई की श्यामा हूँ ।
निज सर्वस्व वार डाला था
मैं ही वह ब्रजबामा हूँ ॥

सुमनों में सौरभ सरसाती
संध्या को लाली देती ।
प्यार सहित प्रभात को मैं हो
अंचल में लेकर सेती ॥

आशा की मैं मधु किरण हूँ
रमी हुई सबके मन में।
मैं आनन्द सृष्टि करती हूँ
दुख के नीरव निर्जन में॥

सुख, सौंदर्य, प्यार-वैभव की
हूँ मैं वरदात्री देवी।
सुर किन्नर-नर-नाग असुर सब
मेरे ही हैं पदसेवी॥

जहाँ चरण अंकित होते हैं
बन जाता है नन्दनवन।
नूपुर की झंकृति से मेरे
झंकृत है यह विश्वसदन॥

मेरी इच्छा से लालित हैं
जग की सब अभिलाषाएँ।
मुझ से ही जीवन पाती हैं
भीमाकार दुराशाएँ॥

मुझसे ही सम्पदा गगन ने
पाई है तारोंवाली।
स्मिति मेरी ही छाई है
होकर वसुधा पर हरियाली॥

अवगुण्ठन के दो नयनों की
प्यार भरी भाषा हूँ मैं ।
हृदय-स्रोत से झर झर झरती
उमगी प्रत्याशा हूँ मैं ।

मैं हूँ भक्ति भक्त के मन की
रागी के उर की माया ।
ज्ञानी को आलोक-राशि हूँ
जगन्निवास की हूँ जाया ॥

पतितपावन

मन्दिर के प्रांगण में भक्तों
की थी भीड़ अपार ।
धूप दीप नैवेद्य अर्घ्य थे
पूजा के उपचार ॥

सामगान से गूँज रहा था
पावन पुण्य प्रदेश ।
रजत किरण से नहा रहा था
वह सारा हृद्देश ॥

स्वर्णपात्र की दीपशिखा का
मन्द मलिन था वेश ।
किन्तु न लख पाता था कोई
उसके मन का क्लेश ॥

मूक विरावहीन झलमल में
उसका मर्मोछ्वास ।
इंगित का अनवरत कर रहा
था नित व्यर्थ प्रयास ॥

हाय दृष्टि विभ्रम में सारा
हुआ पुजापा नष्ट ।
उन्मद, मन अन्ध, आदर का
व्यय होगया कष्ट ॥

सिंहासन पर थे न वहाँ
सर्वात्मरूप सर्वेश ।
शीर्ण कुटी में उन्हें होगया
था अद्भुत था क्लेश ॥

शङ्खध्वनि में बसते हैं क्या
दीनबन्धु भगवान ?
तरस रहे हों त्राण के लिए
जब गरीब के प्राण ॥

क्षमा याचना

मान का अनुरोध हुआ पर
हृदय कहाँ से लाऊँ वह ?
उजड़े उपवन में फिर से मैं
कैसे कली खिलाऊँ वह ॥

सूना निशा है दिन सूना
जीवन की खाली प्याली है।
पीयों एक सन्ध्या के अंचल
की धुँधली सी लाली है ॥

सीमित कुटी के बाहर वसुधा
में उठता है क्रन्दन ।
व्यथित आँसुओं से भरता है
प्यारे देश का रुदन-छन्द ॥

बन्द हो चन्द झरोखे भी ।
मेरे यौवन के ऐसी आज
केवल स्मरण स्वर बजता है
आर्तनाद होरहा आज ॥

आभार

प्रेम रुचिर है मेरा बाले!
रूप रुचिर है तेरा।
हृदय रुचिर है उसका जो
है तेरा चारु चितेरा॥

वाणी उसकी रुचिर प्रिये है
जिसने लेकर गाया।
मेरा प्रणय-गीत सुन जिसको
तेरा जी भर आया॥

इस छवि के कृतज्ञ हैं दोनों
मैं तुम मेरी रानी।
जिसकी वाणी ने प्रस्तुत की
अपनी मिलन-कहानी॥

जीवन का सार

हिलमिल खेलें धूप छाह में
जीवन के दो दिन हैं।
जल अंबर के मध्य धूम्रघन
श्वासों के पल छिन हैं॥

कर लें, धर लें, विहर सिहर लें,
फूलों से घर भर लें।
फिर रस-वास कहां होगी
ये घड़िया अक्षय करलें।

यह मध्यान्ह मिलन जीवन में
अनुपम पुण्यस्थल है।
हृदय हृदय की भेंट करालें,
इसमें कितना बल है!

संसार

हँसी है य सध्या देवी
सस्मिता उषा जिनकी अनुगत।
वैसा जीवन की विषम घड़ी।
है मृत्यु पूतना जिसमें रत।

वैषम्य हलाहल पान किये
ये सूर्य चन्द्र से रथी यहा।
दिन रजनी का मेला देखो
छाया से गूँथी रश्मि जहाँ।

दुख पर सुख का परिधान तना
सुख के तन पर दुख की रेखा।
इस इन्द्रधनुष की रचना में
जग का यौवन खिलते देखा।

प्रश्न

तुम किसे याद कर
नयन-पात्र भरती हो।
यह अश्रु मध्य मयि
सुरुचि किसे करती हो?

तुम लुटा रही हो
हार मोतियों के जो,
सो निधि है ऐसी
कौन जिसे धरती हो?

तुम लिये चित्र हो
किसका उर अन्तर में?
तुम सदा मौन मन
किसे प्यार करती हो?

अनुपम अनन्यता किसे
समर्पित बाले!
जीवन का भी जो
मोल नहीं धरती हो।

सृष्टि और सृष्टा

किस प्रकृति पुरुष ने रचा जगत
इतना रुचिकर, इतना मधुमय।
विस्मयकर नभ, उन्नत गिरिवर,
विस्तृत वसुधा, अभिराम प्रलय ॥

कलकल सरिता, झरझर निर्झर,
झलमल मंजुल तारक दुकूल।
शशि रजत रूप, ज्वालामय रवि,
सागर अकूल, गुल्म मूल फूल ॥

संध्या प्रभा, शुचितम ऊषा,
सुखदुखमय यह जीवन प्रवाह।
बहता बहता जा रहा यहां,
इसके तल की है नहीं थाह।

इस सादि जगत का आदि कौन?
इस सान्त विश्व का अन्त कहां?
किसकी माया से निर्मित यह?
किसकी इच्छा का भास यहां?

यह सूत्र कौन जो ग्रथित किये
ये मणिमुक्ता से विविध रूप ?
भावी के प्रांगण में सबकी
है बाट जोहता कौन कूप ?

यह चिर-रहस्य, यह नित्य सत्य,
यह एक रूप, यह धूप-छाह।
यह अनस्तित्व अस्तित्वपूर्ण
रक्षक है इसकी कौन बाहु ?

मानस में इसके राग रुचिर
इसका कर्तव्य विराग विषम।
अन्तस इसका रस-रास-रचित
इसका वपु केवल ज्योतित तम॥

किससे पूछें, वह सुकवि कहाँ
कर सके निरूपण रूप रम्य।
उस अमृतपुत्र का, प्राण फूँककर
धन्य हुआ जो जग प्रणम्य!

आत्मचर्चा

एक गीत गाया था मैंने
राग तुम्हीं थीं मेरी।
एक स्वप्न देखा था मैंने
जिसकी तुम्हीं चितेरी॥

रुचिर कल्पना बन जीवन में
मेरे तुम आईं बाले!
मेंहदी सी रच गई हमारे
आलिंगन में रस ढाले॥

तुम मेरी आराध्य, तुम्हारे
रस विष का मैं आराधक।
फूट न जायें छाले उर के
छलक न पाये प्रेम-चषक॥

मोह

कितना है मोह बताऊँ,
इस जीवन से प्राणेश्वर!
घड़ियों में जिसकी तुमने
बरसाया था रस निर्झर॥

होकर प्रसून लाये थे
जिसमें वसन्त-श्री प्यारी।
बन महक मधुर जीवन की
भर दी थी क्यारी-क्यारी॥

कैसे मैं उसे बिसारूँ?
कैसे मैं उसे भुलाऊँ?
उस स्मृति तट से मैं कैसे
जर्जर यह तरी हटाऊँ?

नश्वरता

चिर निद्रा है, गहन निशा है,
है तम का अधिवास।
उठता जाता है पल पल पर
प्राणों का विश्वास॥

कब होगा प्रभात, जीवन
फूटेगा आलो
नवस्फूर्ति से स्पन्दित ह
मेरे मन का को

मिटा रही है धरा चिन्ह सब
देकर अपनी थपक।
जला, जला दे धधक धधककर
चिता अभीत मराक॥

कौन लिखरहा है मास्र से
यह सकरुण इतिहास ?
उसे चुनौती देकर बहता है
यह पवन सहास ॥

धीरे बोलो—यह निसर्ग है
माया का षड्यन्त्र ।
प्रतिपल जहां ध्वनित होता है
नाशक मारण मन्त्र ॥

कौन रहेगा, कौन धसेगा,
कौन हँसेगा, हाय !
रुदन ?—नहीं, वह तो बेचारा
है निरीह निरुपाय ॥

साक्षी

मीठी मीठी पीड़ा मन की,
भावों का यह रंग सुरंग ।
अलस पलक की कहीं हमारी
निद्रा के झोकों का ढंग ॥

समझ न लें वे मतवालापन
साक्षी रहना ऐ प्याली !
चुपके कानों में कह देना—
"अबतक सदा रही खाली ॥"

महक न मदिरा आज उतरजा
आते होंगे वनमाली ।
देख, तुझे ही कहना होगा
"अब तक कभी नहीं ढाली ॥"

वर्जन

छुईमुई हूँ मैं सुकुमारी
धानपान से मेरे अंग ।
रस लेने का उधर तुम्हारा
मधुप बावरे उद्धत ढंग ॥

इस असीम अन्तर में कैसे
होगा जीवन का निवाह ?
असमय में ही जला रही है
मुझको अन्तरतम की दाह ॥

कण्टक सी कैसी लीला यह
फूलों के सहचर सुकुमार !
प्रेमप्रदान कौन कहेगा ?
निष्ठुर, यह तो प्रेम प्रहार ॥

मिलन-निशा

मिलन निशा है आज, आज सखि,
भावों का मेला है।
कुसुम कल्पनाओं को, मन का
छू लेता रेला है।

पल पल, छिन छिन गिन गिन आई
चिर वांछित वेला है।
आज हृदय है और, और ही
जीवन का खेला है।

मिलन निशा है आज, आज सखि
भावों का मेला है।

कानपुर के प्रति

पुण्यभूमि के राक्षस,
भारत के दुर्भाग्य ललाम।
शान्ति-कुंज जान्हवी कूल पर
रे अशान्ति के धाम!

छल प्रवचना के चरित्र,
ए विदग्धियों के भाव!
पावन आर्यभूमि भारत के
वक्षस्थल के घाव!

ए दीनों के भक्षक,
पापों की प्रतिमा दुर्दान्त।
अत्याचार निपीड़ित जन के
ए पीड़क उद्भ्रान्त!

ऐ निरीह शोणित से
करनेवाले निज शृंगार।
ए विश्वास विघातक
तुमको बारबार धिक्कार!

न है कलुषों की इति
तेरे, हे कलंक के रूप !
अपने ही रक्त के भक्षक
हे विभीषिका कूप !

किन शब्दों में धिक्कारूँ
किस वाणी से दूँ शाप !
बरस पड़े समस्त नरकों का
तुझ पर ही अभिशाप !

किन्तु अधम कृत्यों का
तो भी होगा क्या प्रतिशोध ?
नहीं, जलाया करे तुझी को
तेरा दुष्ट विरोध ॥

अन्तर की आग

संसृति की वीणा में बजते
हैं विषाद के बोल ।
लाजवती क्यों गोप रही है
अवगुण्ठन तो खोल ॥

रोम रोम क आलिंगन में
सिहर उठे ये प्राण ।
व्यथा चुभ रही आह! हृदय में
होकर खरतर बाण ॥

कौन आग जो जला रही है
रेशम का संसार ।
क्या जानोगी लिये हुए जो
हो अधरों में प्यार ॥

जलाप्लावन

तेरी छवि में स्नान किया
इन आखों ने जब से री।
तब से इनसे बह गईं यहां
कितनी कृष्णा-कावेरी ॥

जीवन-जग डूब गया मेरा
धुल गया हास्य अधरों से।
क्या प्राप्त कहीं होगा फिर भी
जो खोया इन्हीं करों से ?

दर्शन दुर्लभ होगये प्रिये
ऐसा क्या था अपराध हुआ ?
जो कली फूट कर कुसुम हुई
तो क्या अलियों का भाग हुआ ?

विपन्नावस्था के उद्गार

सोया था आनन्द-सदन में
जागा तो यह रूक्ष विजन ।
हाय, नियति की रेखाओं का
भक होगया प्रमुदित मन ॥

कैसा तो यह नील गगन है
कैसी है शालीन धरा ?
अतल अकूल जलधि है कैसा
निर्मम वीचि विलास भरा ॥

अभ्रकष हिमाद्रिश्रेणी है
कैसी हृदय विहीना सो ?
उतर रही है कल कलालिनी
कैसी निज सुख लीना सी ?

आख मूँदते हाय पोंछ दी
सबने अनुपम शिल्पकला ।
दो घडियों में शोक हमारा
सोने का ससार चला !

किरणमयी ऐ ! मुझे बता दे,
उस छविशाला का वह पथ
गई जिधर से उधर ले चलूँ
ता मनोरथों का यह रथ ।

खुल जाने दे, खुल जाने दे,
जीवन की सकीर्ण गली ।
स्वर्ग द्वार पर, पथरजकण पर
होने दे अवतीर्ण अली ।

चरण चिन्ह सोपान पार कर
माँझी मिले, सुहाग मिले ।
इस साधना सिक्त मंदिर में
जग को वह अनुराग मिले

जिसकी पूजा कर पाया था
सावित्री ने प्रियतम धन !
यह छलमय संसार बना है
जिसके कारण नन्दनवन ।

दीपनिर्वाण

जीवन मरुस्थल में
हिमकण बिन्दु-सा
हाय ! वह अचानक अयाचित ही आगया था,
स्वर्ग सुख लेकर ,
वसन्त पुष्प-सा मृदुल
कोमल, ललाम, अभिराम शिशु भाग्यवान् !

सरस हुआ था रसहीन जग ,
हाय हाय , विश्व की कठोरता
हाँ , कर्मरत जीवन भी
जीविका के द्वन्द सब
सहनीय हो गये थे ,
दुष्टग्रह सो गये थे
रात्रि के निविड़ तम
शून्य गृह बीच दीप्तिमान हुआ देखकर
उज्ज्वल आलोकपुंज दीप अनुपम एक।

नीड कर थम गये
आकर अचानक थे
कितने ?—असंख्य स्वर्ण-स्वप्न रम्य,
भूलकर मार्ग सब
उन्नत पयोनिधियों पै,
मुग्ध मनोमंदिर में
मेरी चिर-संगिनी के।
रजनियाँ वे कैसी थीं सुहावनी सुधासुमयी।
धुल धुल किरणों में
बरस रही थी सुधा
ओसकण गूँथते थे मोती चुन चुन कर
वेणी में निशा की गुनगुन कर प्रेमालाप !

गान में विहगग के
आते थे प्रभात नव,
पुष्पराशि -राशि-सी कान्ति
सलोने से, मनोहर से।
आशा के रँगीले पत्र
नील नभोमंडल में
विस्तृत भुवन छोड़
रंजित क्षितिज पार

११७

विहग समूह साथ होते थे प्रभावित क्यों ?
गुदगुदी थी यह ?
उन्माद था ?
विलास था ?
यौवन का रस था मधुर ?
भव्य कल्पना का स्फटिक निर्मित विशाल-सा भवन था ?

भक्ति शून्य ,
रिक्त हाथ ,
मन्द भाग्य ,
शुभ्र उत्सर्ग-भावना विहीन ,
माग के भिखारी को
अपूर्व भाग्य भूषित
किया था किस भूल ने
उस विश्वेश्वर की ,
ज्ञात किसे ? देव हा।

अक्षत- नैवेद्य नहीं ,
अर्घ्य-धूप-दीप नहीं ,
थाली में पुजापा नहीं ,
अंजलि में पुष्प नहीं ,
ध्यान नहीं ,

धारणा, समाधि, तपभाव नहीं,
मन्त्र नहीं,
नेम नहीं,
रिक्त-शून्य दलित चलित विश्वबंधन
विरस तिक्त जीवन में,
देव वरदान तुल्य,
पावन परम पुण्य,
ललित विलास रम्य
मेरे देव! पाया था खिलौना यह
किस स्वर्ण-योग में?
किस सत्कृत्य का
उपहार था यह, हाय!

भोले भोले तोतले सलोने मुख के वचन,
स्मित फुहार से,
समुद्रफेन से धवल,
क्षीर से सरल शुभ्र,
रत्नराशि से अमूल्य,
लुट गये, बिखर बिखर कर मिट गये
अनभिज्ञता में सब एक साथ,
मूल्य कुछ भी तो नहीं उनका लगा सका मैं।

चिन्ह नहीं अवशेष,
एक भी रहा है हाय!
चित्रपट धुल गया,
शान से भ्रष्ट ने,
आकृति-प्रकृति सब
विस्मृत विलुप्त-प्राय
करके प्रहार किया कापुरुष, हन्त हा!

नारी

चिरवंदिनि का आज निरूपण
तुमको कातर करता नारी!
अपने चिरसंगी मानव के
प्रति दोनों भ्रू वक्र तुम्हारी!

आरोपों के पृथुल हिमाचल
के नीचे तुम उन्हें कुचलतीं।
सांस-सांस में रही युगों से
जिनमें आग तुम्हारी जलती।

तुम प्रतिहिंसा लीन आज
विद्रोह रचाये रोम रोम में।
तुम रुद्रा भैरवि कराल बन
हो ताण्डवरत विश्व व्योम में,

अपने चारों ओर देखतीं तुम
कारा बंधन आवेष्टन।
संशय के विष से विषाक्त हैं
आज तुम्हारे दोनों लोचन।

घृणित स्वार्थ की गंध कहाँ से
तुमने नंदनवन में पाई ?
दुश्चिन्ताओं की चिनगारी
मन में किसने आज जगाई ?

तुम मिथ्या भय से भीता हो
गृह स्वामिनि सर्वेश्वरि, मानों।
जीवनसहचरि ! व्यर्थ वहम कर
गृहजीवन पर तीर न तानों।

याद करो वह गत अतीत, य
शैल-कन्दरा, वे निर्जन वन।
फिर याद करो वह हिंस्र सृष्टि
वह कुश शैया, वे अजिन वसन।

हिम आतप वर्षा के वे दिन
वह भू-कर्षण उटज प्रसाधन।
याद करो वह अंधकार युग
वह नैसर्गिक काय विभाजन।

याद करो जब पर्णकुटी में
स्वेच्छा से रहना चाहा था।
याद करो जब व्याघ्रचर्म के
लिए हमें तुमने चाहा था।

सदियों पर सदियाँ, युग पर युग,
याद करो तो कैसे बीते ?
इसी तुम्हारे मानव ने क्या नहा
तुम्हारे हित रच जाते ?

यह निर्बन्ध, निरंकुश प्राणी
बंधनग्रस्त हुआ क्यों देवी ?
क्यों जंजाल लपेटा उसने
जो स्वाधीनता का चिर सेवी ?

प्रथम मिलन के उस मधु क्षण से
क्या यह नहीं तुम्हारा सेवक ?
चिरविश्वासी देवि ! आज ही
तुमसे कैसे हुआ प्रवंचक

क्या चिरजीवन का मधु संचय
उसने अपने लिए किया है ?
क्या चरणों में नहीं तुम्हारे
उसने कण कण हास दिया है ?

गढ़े किये क्या नहीं तुम्हारे
लिए ताज हैं उसने रानी !
स्वर्णमूर्ति गढ़कर क्या उसने
नहीं तुम्हारी महिमा मानी ?

अवगुण्ठन में रहकर भी क्या
रहीं हृदय-मंदिर के बाहर ?
स्वर्ण मेखला में विनिन्दित था
तुम स्वच्छन्दचारिणी भूपर।

घर-घर में तुम नूतन होकर
शासन का सुख दिलातीं।
मानव के सौभाग्य लेख लिखतीं,
लिखकर फिर स्वयं मिटातीं।

महिमा के जो स्वर्ण कलश ले
खड़ी सभ्यता की दीवारें।
वे नर-नारी के कृतित्व की
हैं सुन्दरतर दृढ़ मीनारें।

हम दोनों की सहचरता में
जन्मी हैं सब शिल्प-कलाएं।
क्षुद्र महान सभी कृतियों में
उभरी हाथों की रेखाएं।

तुम अर्धांग पुरुष का देवा,
तुम अर्धांग सृष्टि का नारी।
मानव तक ही क्या सीमित है
यह विस्तृत भूमंडल भारी ?

अपने से बाहर भी नारी का
तुमने क्या रूप निहारा ?
नर के बिना कहाँ नारी ने
जीवन का विस्तार पसारा ?

वन्दनीय मातृत्व साथ में
तुम अपने लेकर आई हो।
त्याग, तपस्या करुणा संयम
की मृदु छवि लपेट लाई हो।

चिरकृतज्ञ नर है नारी का,
चिरकृतज्ञ नारी है नर की।
एक हाथ की नहीं सृष्टि है
यह जीवन के अभ्यन्तर की।

यदि तुमको है यही इष्ट
हम तुम दोनों लें और और पथ।
साथ साथ रह चुके बहुत अब
चलें विरुद्ध दिशाओं को रथ।

प्रतिद्वन्दिनी बनो तुम नर की,
अधिकारों को तुम अपनाओ।
उलट पुलट कर दो जीवन को
एक नया संसार बसाओ।

नरनारी में होड़ मची हो
जीवन व्यापी हो संघर्ष ।
चलो, तुम्हारी इच्छा में है
मानव का सहयोग सहर्ष !

प्रेम या अभिशाप

उन घड़ियों को आग लगे जब
हुआ अचानक दर्शन तेरा
सोने का संसार मिट गया
री, तब से मिट्टी में मेरा।

स्वप्नों की वासन्ती छाया
ज्वार उठाती आई मन में,
कहाँ गईं, वे मादक रातें
भर लाईं थीं मधु चुम्बन में!

फूलों, पत्तों, द्रुम, वल्लरियाँ
में फूले थे भाव हृदय के,
निर्झर के कलकल में गायन
थे जीवन की सुमधुर लय के।

ऊषा स्वर्ण लुटाती आती
सन्ध्या जाती राग रचाय।
ऐसी थी एकाकी दुनियाँ
जिसमें यौवन के दिन आय।

विधि ने तो वरदान मान कर
तुम्हें सहेजा था हे बाले!
किन्तु पड़ गये उसी समय से
यहाँ अचानक दिल में छाले।

आग लगाने लगी चाँदनी,
सौरभ जी में शूल चुभाने।
चन्द्र-करों को बाँट दिये हैं
तुमने तीखे तार मनमाने।

इन्द्रधनुष का चीर ओढ़ कर
तुमने हृदय चीर डाला है।
मुझसे आज पूछती हो वह
कहाँ प्रेम की वरमाला है?

चूरचूर होगया हृदय जब
तारतार हो बिखरी आशा।
मृगमरीचिका-सी तब फिर फिर,
बढ़ा रही हो प्रेम पिपासा।

कोमल तन में पत्थर-सा मन
कैसा विषम विरोध तुम्हारा?
रह तड़पता आहत मानस
गिर न एक अश्रु भी खारा।

भारत गीत

नदियों का है देश हमारा
यहीं हंस होते हैं।
यहीं ओढ़कर हिम की चादर
शैल शिखर सोते हैं।

किरणों का किरीट माथे पर
यहीं शृङ्ग धरते हैं।
पुष्पराशि से लता कुञ्ज सब
यहीं गोद भरते हैं।

झरनों के धारा प्रपात में
करतीं स्नान शिलाएँ।
यहीं बैठ दो घड़ी जगत से
हम मन प्राण जुड़ायें।

ऋषि-मुनियों की पुण्यभूमि यह
मृग मोरों का घर है
थल थल मन्दिर प्रति मन्दिर शुचि
लिये देवता वर है।

बट-पीपल की शीतल छाया
घर घर द्वार-द्वारे।
करती है आतिथ्य अनोखा
शाखा कर विस्तारे।

सामगान था हुआ यहीं पर
सोमपान कर-करके।
इसी देश के कंकड़ पत्थर
में गंगाजल ढरके।

उपनिषदों की इसी भूमि में
धर्म कर्म सब फूले।
संस्कृति झूली यहीं डालकर
ऊँचे ऊँचे झूले।

मातृभूमि का गौरव गिरि सा
वेद पुराण पुरातन।
जिसके हृदय स्रोत से कलकल
बहता अविरत जीवन।

बन्दी की आह

कभी तुम्हारी वेणी में जो
गूँथे थे दो फूल प्रिये !
वे ही आज हृदय में चुभते
होकर तीखे शूल प्रिये !

कौन जानता था जीवन में
आयेंगे ये दिवस प्रिये !
तुम सागर के पार रमोगी
हम तड़पेंगे विवश प्रिये !

जिन हाथों ने किया तुम्हारे
मेंहदी का उपचार प्रिये !
उन हाथों में आज बेड़िया
का है भारी भार प्रिये !

ये अभेद्य प्राचीरें कारागृह
की यह मीनार प्रिये !
एकाकी बस एकाकी है
यहाँ न कोई द्वार प्रिये !

ला सकती संदेश किरण तक
नहीं तुम्हारा यहाँ प्रिये!
मन का मन में ही अरमानें
मिट जाने दो यहाँ प्रिये!

कभी भाग्य जागा तो हम तुम,
भेंटेंगे भर अंक प्रिये,
मेरी हो तो इसी तनु पर
बैठो तुम निःशंक प्रिये!

मोह निवारण

हाय, एक दिन ऐसा होगा
तीरे त्याग कर दूर बहेगी—
यह तरंगिनी स्वर्णलता भी
नहीं वृक्ष का प्यार सहेगी ।

इस झुरमुट में हृदय खोलकर
गानेवाली यहाँ न होंगी
ये बुलबुल तितली ये भीने
परों वाली मधुरस भोगी ।

इन गलियों में रुनुक्‌झुनुक कर
फिरनेवाली ये बालाएँ
कहाँ रहेंगी ? झर जायेंगी
मनोहारिणी ये कलिकाएँ।

ये पनघट, खलिहान और ये
दोनों ही में घास उगेगी ।
गिरिवर की खोह चट्टानों में
प्राणों की प्यास जगेगी ।

सुख के घर में शोक बसेगा
पथिक बनेगा यह अधिवासी।
इस मरघट में साज सजेंगे
जहाँ छा रही घोर उदासी।

यह परिवर्तन ही जीवन है
सृष्टि इसी के रस को पीती।
इसीलिए तो मर मर कर भी
नित्य निरन्तर है वह जीती।

स्वप्न

स्वप्नों का आहार चाहिए
स्वप्नों का जल पीने को।
स्वप्नों की धरती बसने को
स्वप्नों का पट सोने को।

स्वप्नों का मधुपान, स्वप्न
की सुन्दर दुनिया रहने को।
स्वप्नों की उर्मिल सरिता हो
जब जी चाहे बहने को।

स्वप्न, स्वप्न हों—मधुर रेशमी
स्वप्न जगत में जाने को।
स्वप्नों की संगीत-सुरा हो
ढाल-ढाल कर पाने को।

स्वप्नों के तृण-तृण से निर्मित
नीड़ विश्व के कोने में।
स्वप्न हँसी में फूल रहे हों
स्वप्न हमारे रोने में।

सास सास में नव नव स्वप्नों
की बयार के झोंके हों ।
वासन्ती स्वप्नों के बादल
जीवन का पथ रोके हों ।

जल थल भू अम्बर में था मुक्त
महिमा के पद चिन्ह जड़े ।
स्वप्नों से प्रेरित है, स्वप्ना
की माया से प्राण पड़े ।

स्वप्नों की सीपी से वसुधा
ने अगणित मोती पाये ।
स्वप्नों की लहरों से मानव
का उर सागर लहराये ।

खोया बचपन

मेरे बचपन के दृश्य, सजीव बना तुम,
पतझड़ में पावस मेघ वितान तनो तुम,
इस विस्मृति पट को भेद प्रकाश बनो तुम
यह चिरसंतापन हाहाकार हना तुम,

क्षण भर को मेरे रुचिर विगम विराजो।
आओ जीवन में सरस सुधा-सुख लाना।

गृह यही पुरातन है पुरखों का मेरा।
माँ और तात का यही मनोज्ञ बसेरा।
मेरी क्रीड़ा को प्रथम इसी ने हेरा।
है मेरा यह मृदु भाव इसी का प्रेरा।

मैं इसमें ही अवतरी इसी में खेली।
इसमें ही विकसी जीवन जटिल पहेली।

भूली बातों का चित्र हमारा घर है।
बीती यादों का मित्र हमारा घर है।
घटनावलियों का दृश्य सजीव अमर है।
अनगिन लड़ियों का केन्द्र परम सुन्दर है।

विजडित है इसमें भव्य भावना ढेरी ।
अंकित है इसमें कथा कहानी मेरी ।

सरिता का थोड़ी दूर मनोरम तट है ।
कङ्कण किंकिण-रव रम्य उधर पनघट है ।
वंशीवट सा हा सघन सजीला वट है ।
होता सखियों का जहा नित्य जमघट है ।

चिरपरिचित वह अभिराम क्षितिज का घेरा ।
भावों का पक्षी जहां विचरता मेरा ।

सखियो, वे बिसरे गीत आज फिर गायें ।
उलझे वे रेशम-तन्तुजाल सुरझायें ।
बचपन के अपने दिवस तनिक फिर आयें !
मानस की मुरझी स्नेह लता लहरायें ।

हो कुसुम-चयन वह और वही अमराई !
गूथें माला कुछ देर घड़ी मनभाई ।

सरिते, तुम बहती चली जा रही ठहरो ।
सुनलो रुक कर दो घड़ी बाद में लहरो ।
शीतल जल के कुछ बूंद इधर भी छहरो ।
अपनी धुन में फिर निरत मस्त ही लहरो ।

मानस की हरलो तपन, हृदय की पीड़ा ।
फिर करो सतत स्वच्छन्द लाडिली क्रीडा ।

मैं आई हूँ तट ओर लिए घट खाली ।
तू चली जा रही लीन आपमें आली !
छाई कछार पै कुंज कुंज हरियाली ।
बरसी फूलों के पात पात पर लाली ।

जीते हैं पाकर नीर तीर द्रुमशायी ।
हरते हैं श्रम भी और पुष्परसपायी ।

सखियों का सुखमय साथ हँसी से पूरा ।
तेरा तट क्रीड़ास्थान बना है रूरा ।
बनता है आकर हेम यहाँ पर धूरा ।
होता है गर्व भार स्वयं ही चूरा ।

यह पुण्यधाम है रुचिर तपोवन आहा !
सब तो देवों ने मेरा भाग्य सराहा ।

मेरे बचपन की सखी कोकिला ! बोलो ।
रसमय वाणी में तुम्हीं आज रस घोलो ।
खींचे अन्तर के तार प्यार से खोलो ।
दुखभार नत तो हृदय तुला पर तोलो ।

देखो मैं कितनी दूर हाय बह आई ।
तुम रहीं उधर मैं इधर बीच में खाई ।

ए डगर सांवरी, तुझे याद वे दिन हैं ।
तेरे परिचित वैसे ही, उभय पुलिन हैं ।

हाँ, उसी भाँति तो चरते दूब हरिन हैं।
नीड़ों से खग शिशु झाँक रहे अनगिन हैं।

शुकपिक खोतों से बढ़ कर पर पसारे।
उड़ते उड़ते जा रहे अरण्य किनारे।

पर हाय, कहाँ वे आज हमारे दिन हैं?
वे कहाँ हमारे पाले हुए हरिन हैं?
गल गये अश्रु बन दोनों नयन-नलिन हैं।
जो कुछ है बचपन के वे बीते छिन हैं।

वह सोने का संसार हमारा खोया।
हा! सूख गई पथ में ही जीवन-तोया।

वह वृद्धा दादी कहाँ, कहाँ वह मैया?
वह कहाँ पड़ोसिन डगमग जीवन नैया?
वह कहाँ तृणों से निर्मित छप्पर-मड़ैया?
है जहाँ वसन्ती फूली फूल कटैया।

जीवन प्रवाह है वही न पर वे लहरें।
आँखों से बूँदें अनायास ही छहरें।

मैं खोल रही हूँ स्मृतियों की जो चादर,
है तार तार में उसके लिपटी मृदुतर
झाँकी बचपन के मधुर दिनों की सुन्दर,
धीरज पर इतना कहाँ कि सबको चुनकर

मैं सूना सूना कर धरूँ जगत के आगे।
कैसे भावुक ले बुनूँ जीर्ण हैं धागे?

तारों से है नभ जड़ा, रैनि अँधियारी।
गौरव अतीत का विभव किन्तु अब क्या री!
जो मैं सहेज कर धरूँ सम्पदा सारी।
वह स्वप्न हो गई रंगिनि केशर-क्यारी।

मैं आज रंकिनी अंचल रिक्त पसारे।
रत्नाकर के तट लुटी रत्न सब हारे।

कल ही तो था आकाश हमारा नीला।
कल ही तो आँखों देखी विद्युत् लीला।
सूखा है अंचल कहाँ स्नेह से गीला?
थामे थी जिसको प्यारा सखी सुरीला।

वह इन्द्रधनुष से रंगा हमारा अंबर।
चुपके चुपके वह हाय रम गया है कब?

मैं स्नेह वंचिता, प्रेम वंचिता नारी।
मैं स्वाराशि-वंचिता परम दुखियारी।
मैं लुटी हुई हूँ वह वसन्त फुलवारी।
मुझमें स्मृति की विकल वेदना सारी।

हैं कसक रही जो नित्य शूल बन मेरे।
वे सराबोर, वे मुझे चतुर्दिक घेरे।

नीहारिका

मैं दीपशिखा हूँ एक जल रही ज्वाला।
मैं हूँ कर्मों की लीक कठोर कराला।
मैं हूँ जीवन सर्वस्व वंचिता बाला।
जिसकी कुटिया में रंच न हाय उजाला।

मैं घोर घाम में तपी हुई हूँ व्याली।
मैं तमोराशि हूँ निशा सिसकती काली।

कुहुकिनि माया ने बुना जाल है कैसा!
परिपन्थ यथार्थ से भिन्न हाय है कैसा!
है भेद-भाव-वैषम्य मात्र ही ऐसा
मेरे जीवन का गीत गान है जैसा!

छिप छिपकर सब धो दिया शेष अब क्या री!
है जटाजाल-सी जटिल कर्म-कथा री!

बैठी निष्ठुरता हाय भाग्य को घेरे।
इन नयनों ने हा स्वप्न रेशमी हेरे।
वे कहाँ अरे परियों के चित्र चितेरे।
वे कहाँ तूलिका लग्न भाव हैं मेरे?

उठ चलो सुमुखि, कुछ दूर उधर हो आयें।
है जहाँ विटप से लिपटी ललित लताएँ।

जब सूख चला रस स्रोत प्राण जीवन का,
छाया कुहरा सा यहाँ निराट विजन का,

तब लगती हूँ मैं मधुर दृश्य उस दिन का
दर्शन है कितना नव्य भव्य बचपन का।

है हुई आज ही तो कृतार्थ यह काया।
मैंने भी लोचन लाभ आज ही पाया।

